RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-09
September-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित महानगरीय जीवन

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड रत्नागिरी

ARTICLE DETAILS

Article History
Received: 05 August 2017
Accepted: 10 Sep 2017
Published Online: 15 Sep 2017

ABSTRACT

स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे –धीरे सामाजिक ढॉचा टूटता बिखरता जा रहा हैं. इस बीच जो नई परिस्थिति हमारे सामने आई हैं. उसने अनेक समस्याओं तथा विद्रुपताओं को जन्म दिया हैं. औद्योगिकीकरण, सहशिक्षा, अग्रेजियत एवं उसकी नग्न यंत्रवत पाशविक सभ्यता ने भारतीय जनमानस को ज्यादा प्रभावित किया हैं. गृहस्थ जीवन से लेकर साहित्य, कला, समाज, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में कतिपय समस्याओं का जन्म हुआ. गृहस्थ जीवन को सुरक्षित रखनेवाली और अगली पीढी में मूल्य का सिंचन करनेवाली नारी इस परिवर्तन से विशेष प्रभावित हुई. स्वाधीनता के बाद औद्योगीकरण एवं शिक्षा से भारतीय समाज में उठी हलचल और उससे उत्पन्न समस्याएँ समकालीन कथाकारों के लिए चुनौती बनकर आयी. जिसे अभिव्यक्त करना साहित्यकारों का दायित्व बन गया. इस बदलाव की विषम प्रक्रिया को व्यक्त करने में अनेक कथाकार जुड गये. उन्होंने साफ महसूस किया कि गॉव की तुलना में महानगरों की स्थिति अधिक गंभीर एवं सोचनीय हैं. पाश्चात्य सभ्यता के संक्रमण, अंधानुकरण एवं फैशनपरस्ती के परिणामस्वरुप नयं नयें प्रतिमान उभर रहे हैं. इन्हीं प्रतिमानों को समकालीन साहित्यकारों ने वाणी देने का प्रयास किया हैं

प्रयोजन :

1. महानगरों में रहनेवालों का जीवन यांत्रिक एवं स्वकेंद्रित होता हैं. उनकी सुख सुविधाएँ यंत्र के साथ जुडी हुई होती हैं. समकालीन कथाकारों ने उसे किस तरह चित्रित किया है उसे प्रस्तुत करना हैं.
2. यंत्र और उसके शोर के बीच रहकर व्यक्ति भी यांत्रिक बन गया हैं. वह दिन–ब–दिन संवेदनहीन बनता जा रहा हैं. समकालीन कथाकारों ने कथा के माध्यम से दिखाया हैं.
3. अजनबीपन, अकेलापन, संवेदनहीनता, संत्रास, तनाव, घुटन, कुण्ठा, अनिश्चितता, दोहरापन जैसी अनेक समस्याएँ जाने अनजाने में महानगरीय जीवन शैली का हिस्सा बन गई हैं.उसे कथाकारों ने अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित किया हैं उसे सबके सामने प्रस्तुत करना हैं.

प्रस्तावना –

इस प्रकार महानगरीय जीवन उपर से जितना सहज, सरल, आकर्षक एवं सुखमय दीखता है उतना नहीं हैं. पाश्चात्य प्रभाव को तोड मरोड कर धारण करने की प्रवृत्ति ने महानगरिय जीवन को अंदर बाहर दोनों स्तर पर बुरी तरह झकझोर दिया हैं. इन विषम परिस्थितियों से बेखबर ग्रामीण जन नगर तथा महानगरों की तरफ प्रयाण कर रहे है जो उसके लिए घातक हैं. समकालीन कहानी साहित्य महानगरीय जीवन के जटिल संदर्भो से अनिवार्यतःजुडा हुआ हैं. महानगरों की अनेक समस्याओं, परिवेशगत जटिलता और क्रुरता तथा इस सबके बीच अपने अस्तित्व के लिए जूझते असहाय, विवश मानव के संघर्ष ने कहानीकार को न केवल भीतर तक झकझोर दिया हैं बल्कि उनकी संवेदनाओं को भी आहत किया हैं. यही कारण हैं कि समकालीन हिंदी कहानी साहित्य में महानगरीय जीवन के विविध पहलुओं की सशक्त एवं सजीव अभिव्यक्ति देखी जाती हैं.महानगरीय जीवन शैली का चित्रण कहानीकारों का वर्ण्य विषय रहा हैं. उनकी अनेक कहानियों में महानगरीय जीवन की कटु यथार्थ का चित्रण सूक्ष्मता से व्यक्त किया हैं.

कृत्रिम यांत्रिक जीवन –

कृत्रिम एवं यांत्रिक जीवन पद्धति महानगरीय जीवन का एक स्वाभाविक हिस्सा हैं. आज के इस यंत्र युग में व्यक्ति खुद मशीन हो गया हैं. बाहर की पार्थिव दौड–धूप की अंधाधुंद खींचतान में उसके भीतर का सूक्ष्म इन्सान खो गया हैं. महानगरों का संपूर्ण वातावरण कृत्रिमता से भरा हैं. महानगरीय व्यक्ति के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान, बातचीत एवं आपसी संबंधों में बनावटीपन झलकता हैं. अलमारी में सजी हुई पुस्तकें बुद्धिजीवी होने का दिखावा करती हैं, तो ड्रोइंग रुम में सुसज्जित विलासिता की चीजे आर्थिक स्तर का प्रदर्शन करती हैं.

अज्ञेय कृत 'रोज' कहानी की नायिका मालती एक बंधी यांत्रिक जिंदगी जी रही हैं. मालती का व्यक्तित्व पारिवारिक माहौल में पथरा कर यंत्रवत हो चुका हैं. अब उसे गृहस्थी जीवन का आनंद प्रभावित नहीं करता. ––मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यंत्रवत् वह भी थके हुए यंत्र के से स्वर में कह रही हैं–'चार बज गये–'मानो

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

इस अनैच्छिक समय गिनने–गिनने में ही उसका मशीन तुल्य जीवन बीतता हो.'1

इस बात से पता चलता है कि इन्सान ने खुद ही ऐसी चीजों का संसार अपने चारों ओर खडा कर लिया हैं, जिनका अस्तित्व पहले कभी था ही नहीं. वह सामाजिक संरचना का एक ऐसा ढॉचा निर्मित करता जा रहा हैं, जिसमें वह स्वयं मशीन का पुर्जा बनकर रह गया हैं. अपने ही हाथों से नाई चीजों के बीच उलझ चुका हैं. इससे स्पष्ट हैं कि इस प्रकार के परिवेश में चारों ओर तेजी से हो रहे महानगरीकरण, मशीनीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण जीवन में गति, यांत्रिकता एवं शोर पैदा हुआ हैं. इस बीच रहकर व्यक्ति ने अपनी भावनात्मकता को खत्म कर दिया हैं.

संयुक्त परिवारों का विघटन –

भारतीय संस्कृति की सभ्यता संयुक्त परिवार का समर्थन करती आ रही हैं. वर्तमान काल में जीवन की व्यस्तता एवं अर्थ केंद्रित दृष्टी ने संयुक्त परिवार प्रथा को अधिक ठेस पहुॅचाई हैं. अब लघु परिवार को महत्व दिया जाने लगा हैं. आज अर्थ के केंद्र में सारे रिश्ते एवं संबंध बिगड गये हैं. लालच एवं सवार्थ की बुनियाद पर खडे रिश्तों की बुनियाद खोखली हो गयी हैं. आज ग्रामीण आबादी नगर एवं महानगरों की ओर आकर्षित हुई. नगरों में आबादी की तुलना में बुनियादी सुविधा नहीं बची जिसकी वजह से अनेक प्रकार की समस्याएॅ खडी हो गयी. इन समस्याओं के बीच संयुक्त परिवार में रहना और जीना मुश्किल ही नहीं असंभव–सा लगने लगा. नई और पुरानी पीढी के वैचारिक टकराव भी पारिवारिक विघटन का एक महत्वपूर्ण कारण हैं. वैचारिक असमानता ने दोनों पीढी के बीच दूरियॉ बढा दी हैं. जिसमें पुरानी पीढी के वृद्ध अकेले पड रहे हैं.

रमेश बतरा की कहानी 'हुटर' में संयुक्त परिवारों के टूटने का चित्रण किया गया हैं. जग्गी अपने पति के आय में अपना तथा अपने बचचों का निर्वाह कर नहीं पाती अतः वह संयुक्त परिवार का बोझ को ढोने से साफ इन्कार कर देती हैं. अर्थ के कारण टूटते परिवार का चित्रण कृष्णा अग्निहोत्री की 'टुईया की अम्मी' कहानी में किया गया हैं.टीटू मॉ–बाप को पूछै बगैर शादी कर लेता हैं और अपनी पत्नी के साथ अलग रहने के लिए चला जाता हैं.वह मॉ को खाना भी नहीं देता. पिता जब शिकायत करते तब वह कहता हैं– ''ये सब हम कहॉ से लाए? मेरी भी दो लडकियॉ हैं. इनसे कहते है कि ये अपना जेवर मुझे दे दे. उसे बेच मैं रुपया बैंक में जमा कर दूॅगा और उसका ब्याज आसानी से खाता रहूॅगा.''अंत में मॉ लाचार होकर भीख मॉगती फिरती हैं.''2

भारतीय परिवार पश्चिम के अंधे अनुकरण के कारण भी टूटता नजर आ रहा हैं. गोंविंद मिश्र की शापग्रस्त' कहानी इसी का प्रमाण हैं. नायिका पैसौं की चकाचौंध में भौतिक सुख की ओर आकर्षित होकर परिवार को भी भूल जाती हैं. वह पति को छोडकर किसी विदेशी व्यक्ति के साथ जुडकर अपने परिवार को त्याग देती हैं. कामतानाथ की कहानी 'मकान' में पारिवारिक विभाजन का चित्रण बारीकी से हुआ हैं. '' इसके बाद मुन्नू दादा अधिक दिनों तक घर में नहीं रहे. उनकी पत्नी और मॉ दोनों में अनबन रहने लगी. पहले तो घर में दो चुल्हे जले. ––यह सिलसिला भी ज्यादा दिन नही चला. जल्दी ही मुन्नू दादा घर छोडकर चले गये और धीरे–धीरे दोनों परिवारों में आना–जाना तक बंद हो गया.''3

इस प्रकार आधुनिक कहानीकारों ने संयुक्त परिवार के विभिन्न भावों को सूक्ष्मता से अंकित किया गया हैं. परिवार में त्याग, परोपकार जैसे मूल्यों का अभाव दिखाई दे रहा हैं. आपसी रिश्तों में आत्मीयता का भाव दिखाई नहीं देता.

अकेलापन एवं एकाकीपन की अभिव्यक्ति–

महानगरों में संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटने के कारण अकेलेपन की समस्या बढी हैं. यांत्रिक जीवन, व्यस्तता एवं स्वार्थ भावना ने मानव–मानव के बीच अपरिचय की दीवार खडी कर दी हैं. महानगरीय आदमी भीड में रहकर भी अजब सी बेचैनी और अकेलापन का अनुभव कर रहा हैं. अपनी दौडती जिंदगी में वह ठिक से न किसी से आपसी संबंध रख पाता हैं और न निभा पाता हैं.व्यक्ति अपने अकेले में जीता हे और पास रहकर भी दूरियों का अनुभव करता हैं. अपनी प्रतिक्रिया देते हुए देवेंद्र इस्सर ने लिखा है कि –''इस अर्थव्यवस्था में स्वार्थ, भौतिक सुख, धन और पद प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण हैं. निजी रिश्तों और परिवार के विघटन में हर आदमी को अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए बेसहारा और तनहा छोड दिया हैं. वैयक्तिक रिश्तों और संयुक्त जीवन के विघटन के कारण मनुष्य एक ऐसी स्थिति से गुजर रहा है, जिसे कई नाम दिये गये हैं–एकाकीपन, अजनबीपन, अवैयक्तिकता,अलगांव और एलिएनेशन.''4

महानगरीय परिवारों के दाम्पत्य जीवन में वैवाहिक कारणों से आये तनावों में उसका खोखलापन, रिक्तता एवं जीने की मजबूरी 'शहर–दर–शहर' कहानी में अभिव्यक्त हुई हैं. –''पत्नी में एक कमजोरी थी. वह शाम से दूर भागती थी. पति को शहर ने शाम के भय से मुक्त किया हुआ था, शाम उनके लिए क्लब, बाजा, प्याला होती थी. पत्नी से शाम अकेली झेली नहीं जाती. बगीचे दरख्त, मकान के दरवाजे, बंद और खुली खिडकियॉ, खाली भरे कमरे, खाली कुर्सियॉं से भरा बरामदा सब मिलाकर उन्हें काटने दौडने थे.''5

निर्मल वर्मा की एवं नयी कहानी परंपरा की पहली कहानी समझी जाने वाली कहानी 'परिंदे' में लतिका के अकेलेपन का उजागर किया गया हैं. मिस लतिका एक पहाडी कस्बे की कान्वेंट स्कूल में टीचर हैं. अपने प्रेमी गिरीश की मौत के बाद लिकुल अकेली पड जाती हैं. वह अकेलेपन में इतनी खोई है कि छुट्टीयों में कही बाहर जाने के बजाय वीराने अकेले स्कूल में रहना पसंद करती हैं.हयूबर्ट के पूछने पर

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

कहती हैं– ''अब यहॉ मुझे अच्छा लगता हैं–पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था, अब आदी हो गई हूँ''6
इसके अलावा अकेलापन एवं संध शून्यता को उषा प्रियंवंदा की 'जिंदगी और गुलाब के फूल', मोहन राकेश की 'आद्रा', अमरकांत की रक्तपात आदि कहानियों में अकेलेपन को वाणी देने का प्रयास किया गया हैं.

घुटन, तनाव एवं कुंठा –

स्वतंत्रता के पश्चात् महानगरों की तेजी से वृद्धि हुई और उतनी तीव्रता से आर्थिक वैषम्य भी बढा. सामान्य जनता अभावें की चक्की में पिसती और कराहती रही. महानगरीय मध्यवर्ग की बढती महॅगाई, चारो ओर से जीवन को जकडती यांत्रिकता और सम्मान पूर्वक जीने की उसकी आकांक्षाओं ने उनके संघर्ष की तीव्रता को बढा दिया हैं. इसमें वह वर्ग टूटता एवं घुटता रहा. घोर निराशा ने कुण्ठा को जन्म दिया और बेधक एकाकीपन ने उसे घेर लिया. वर्तमान समाज में हर व्यक्ति टूटता एवं घूटता नजर आ रहा हैं. आज व्यक्ति का जीवन इतनी विसंगतियों से भरा पडा हैं और मानसिक स्तर पर इतने अंतर्द्वन्द्व है कि व्यक्ति निरंतर घुट रहा हैं. वैयक्तिक जीवन में यह संघर्ष, जीवन मूल्यों की टूटन, नैतिकता के विरुद्ध अनैतिकता का दबाव तथा आपसी संबंधों में दरार आदि का तनाव के कारण है जिसकी अभिव्यक्ति सांप्रत कहानियों का प्रधान वर्ण्य विषय हैं.

कमलेश्वर की 'दुःख भरी दुनिया' कहानी में तनाव एवं निराशा का चित्रण हुआ हैं. बिहारी बाबू एक लाचार, विवश पिता है जिसकी आर्थिक स्थिति पतली हैं. बिजली कंपनी में काम करते हुए बिहारी बाबू अपने से उॅचे अफसरों को देखकर अपने वर्तमान को कुढते हैं. बिहारी बाबू अपने बच्चे दीपू के साथ दो–तीन घंटे माथा खपाते हैं, किंतु फिर भी दीपू पढता नहीं है तो बिहारी बाबू निराश होकर तनाव महसूस करने लगते हैं. एक ही बिस्तर पर सोते हुए भी पति–पत्नी किस प्रकार एक–दूसरे से अलग और दूर चले जाते हैं इसका यथार्थ वर्णन मणिका माहिनी की 'एक ही बिस्तर पर' कहानी में देखा जा सकता हैं.–'उसके साथ लेटे हुए उपर से तो यही लगता हैं कि जैसे हम एक दूसरे के हो रहे है या हो जानेवाले है लेकिन हम दोनो के दिल हमें छोडकर कितनी– कितनी दूर उड रहे थे, इसका एहसास मैं आसानी से कर रही थी. उसके साथ मेरे जीवन की यही ट्रेजेडी है कि वह मेरे साथ रहकर भी मेरं साथ नहीं रह रहा होता. उसकी बॉहें मेरे इर्द–गिर्द लिपटी हुई उसके पतित्व का निर्वाह भले ही कर रहीं हों, किंतु उनमें किसी किस्म की गर्माहट नहीं थी. एक जाना पहचाना ठंडापन उसके रोओं से निकलकर मेरे चारों ओर फैलता जा रहा था.''7

शिक्षित स्त्री अधिक सजग एवं बौद्धिक हो गई हैं, अतः समाज और परिवार के साथ वैचारिक तालमेल न बैठ सकने पर वह कुंठा तथा तनाव का शिकार हो जाती हैं. मालती जोशी की कहानी 'मध्यांतर' में विमल पंडित के कंधों पर धर गृहस्थी और कार्यालय का बोझ है जिसे बेलेन्स करते करते स्वयं तनाव एवं धुटन का अनुभव करती हैं. विशेषतः पति के दोहरे मापदंड से परेशान हैं. उसका पति 'अगला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं का नारा लगा रहा हैं.जबकि बहन को चार लडकियों के बाद लडका होने प रवह खुशी मनाता हैं. तनाव बढने पर विमल चीखकर कहती हैं–''औरत कहलाने को कुछ बॉकी भी रहने दिया है तुमने. सब तो निचोड लिया हैं. पैसे कमाने की मशीन रह गई हूँ मैं इसलिए मेरा रोना कल्पना सबकी ऑखों में आता हें.मशीन हूं न, रोने का हक थोडे ही है मुझे.''8

महानगरों की भीड में व्यक्ति की अकुलाहट, जीवन की वेदना, घुटन आदि आधुनिक बोध का परिणाम हैं. नित्य एक सा जीवन, पारिवारिक झगडे, कार्यालय का घुटनभरा जीवन, नीरस तथा अनिश्चित वातावरण, रास्ते की भीड–भाड, शोर और धक्का–मुक्की आदि से व्यक्ति का मन घुटन एवं तनाव से भर जाता हैं. उपर से समाज के प्रति असंतोष, आर्थिक असमानता और जीवन निर्वाह की समस्या ने मानसिक तनाव को बडावा दिया हैं. साप्रंत पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था इतनी भयानक और सशक्त होती जा रही है कि उसमें जीने वाले साधारण मनुष्य के प्राण निराशा, घुटन, पीडा आदि से छटपटा रहा हैं. मजबूरी और विवशता में व्यक्ति में कुंठाऍ और विकृतियॉ उत्पन्न कर दी हैं.

निष्कर्ष –

महानगरीय जीवन में मनुष्य के मन एवं मकान का धरातल शनैः शनैः सिकुडता जा रहा हैं. रिश्ते दिल से नहीं बुद्धि एवं रुपयों के आधारपर निश्चित किये जाने लगे हैं. दो पीढियों के बीच में आत्मसम्मान की जगह अहम् जागृत हुआ है जिससे दोनों के बीच दूरियॉ बए रही हैं. महानगरीय स्पर्धा, महॅगाई और व्यस्तता ने पारिवारिक भावात्मकता को खत्म कर दिया. आवास समस्या ने माता–पिता को साथ न रखने के लिए लोंगों को मजबूर किया हैं. स्त्री–पुरुष अपने पद, प्रतिष्ठा एवं महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतू चोरी छिपे अपनी मर्यादा एवं संस्कारों को तोड रहे हैं. नाजायज संबंधों को स्वीकारने लगे हैं. कही आर्थिक शोषण होता हैं, तो कही शारीरिक. इन सभी की पूर्ति के अभाव में महानगरीय मनुष्य तनाव, कुंठा एवं संत्रास का अनुभव कर रहा हैं. ऐसे अनगिनत सवालों और समस्याओं के जरिये महानगरीय जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत करने का समकालीन कहानीकारों ने सार्थक प्रयत्न किया हैं.

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

संदर्भ ग्रंथ –

1. कथान्तर –सं. परमानंद श्रीवास्तव एवं डॉ. गिरीश रस्तोगि–पृष्ठ–67
2. दूसरी औरत– कृष्णा अग्निहोत्री–पृष्ठ–109
3. तीसरी सॉस–कामतानाथ–पृष्ठ–95
4. साहित्य और आधुनिक युगबोध–देवेंद्र इस्सर–पृष्ठ–3
5. संपूर्ण कहानियॉ खंड–गिरिराज किशोर–पृष्ठ–24
6. परिंदे –निर्मल वर्मा–पृष्ठ–143
7. खत्म होने के बाद –पृष्ठ–14
8. मध्यांतर –मालती जोशी–पृष्ठ–97

© RRIJM 2015, All Rights Reserved